Cosmos Multidisciplinary Research E-Journal
Online Available at www.cmrj.in
Recognized International Peer Reviewed Journal
Impact Factor 5.69
ISSN No. 2456-1665

सुमित्रानंदन पंत के काव्य मे विश्व आस्था का भाव

डॉ.शंकर गंगाधर शिवशेट्टे
सहयोगी प्राध्यापक एवं हिन्दी विभागाध्यक्ष
श्री बंकटस्वामी महाविद्यालय,बीड
sgshivshette@gmail.com
Mob-9960562049

सुमित्रानंदन पंत को पढ़ते हुए मुझे कई बार ऐसा लगा है जैसे वे किसी विकल्प आस्था-तंत्र की तलाश में हों। उनकी समूची कवितायात्रा इसी विकल्प विश्वास-बोध की प्यास से उपजी हुई लगती है, पंत की आध्यात्मिक अपेक्षाओं का यह संसार संगठित धर्मो और उनके बाध्यकारी तंत्र से अलग है। यह 'हृदयहीन दुनिया की आत्मा' (मार्क्स) वाला 'रिलीजन' भी नहीं है। दरअसल, पंत आस्थाओं के एक ऐसे विश्व के वासी थे और पूरे संसार में उसे व्याप्त होते हुए देखना चाहते थे जो बाँधता न हो, मुक्त करता हो। ठीक वैसे ही जैसे हवाएँ, आकाश, धरती और वन मुक्त हैं। इस 'ताप तप्त जगती' के 'रिलीजन' सिर्फ बाँधते ही नहीं, बल्कि जनता का समूहीकरण करके एक समूह की जनता को दूसरे समूह के खिलाफ खड़ा भी कर देते हैं। ऐसे ही 'मजहबों' द्वारा प्रदत्त फाँक से इंटिग्टन की 'सभ्यताओं का संघर्ष' वाली अवधारणा निकली है। धार्मिक आतंकियों से दहशतज़दा विश्व के चित्र की कल्पना भी हमें डर से झकझोर देती है।

इस तरह मोहक छायावादी कवि सुमित्रानंदन पंत एक ऐसे विश्व और उसको संचालित करने वाली आस्था की तलाश में है जो सब कुछ को सुखद बना दे। इसी कारण उनकी कविताओं में "सुख हँसता और दुःख गाता/विश्व दीखता एककार"1 जैसी आकांक्षा झलक मारती दिखती है। कोई इसे रूमानी कल्पनाओं का विश्व भले ही कह ले लेकिन इसमें जो सपने हैं, जो अपेक्षाएँ हैं, उनका ठोस वस्तुगत आधार है। असल में पंत ने

जग जीवन के तम में
दैव्य अभाव शयन में
परवश मानव !2

जीवन को निरंतर देखा है। उसकी वेदनाओं को महसूस किया है। कवि ने संसार में बन्धनयुक्त मनुष्य की छवि को देखा है, मनुष्य के बंधनों का कारण और उसकी यह छवि उसे निरन्तर व्यथित भी करती आयी है। कवि मानता है कि -

शत् मिथ्या वाद विवाद, तर्क
शत् रूढ़ि नीति शत् धर्म द्वार
शिक्षा, संस्कृति, संस्था समाज
यह पशु मानव का अहंकार 3

इसी तरह विडम्बनाओ को अपनी विचारधाराओं, धर्मों, संस्कृतियों, संस्थाओं आदि को मनुष्य अपनी सभ्यता और उसके विकास का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा मानता आया है। कवि के लिए यही सब उसके अहंकार और पशुता की निशानियाँ बन गयी हैं। असल में, पंत ने महसूस किया था कि संसार में लोग अपने विश्वास, आस्था, विचार, संस्था आदि को लेकर रूढ़ियों में जकड़े हुए हैं। ज्ञान के प्रकाश के बावजूद लोग इनको लेकर जड़वत् हो चुके हैं। दरअसल धर्म, विश्वास, निवास-स्थान और प्रजाति जैसी अवधारणाओं को लेकर लोग न सिर्फ रूढ़ और जड़ हो चुके होते हैं, बल्कि स्वयं अपनी चेतना के कैदी बन जाते हैं। साथ ही अपने से अलग के प्रति हिंसक और

असहिष्णु भी हो चले हैं। ये सारे तथ्य पंत की परिकल्पना के मुक्त और स्वतंत्र विश्व के विरोध में थे। इसी कारण अपनी रचना में ही सही- कवि को अपनी आकांक्षा का विश्व सृजित करना था उन्होंने ऐसा किया भी। और पंत ही क्यों हर बड़ा सर्जक और विचारक किसी न किसी वैकल्पिक विश्व का वासी होता है। वह वैकल्पिक विश्व कबीर के लिए 'वैकुण्ठ' है तो तुलसी के लिए 'रामराज'। सेन्ट साइमन और चार्ल्स फूरियर के लिए वह 'यूटोपिया' हो सकता है, तो मार्क्स के लिए 'कम्यून पद्धति'।

अभी-अभी विचारों के 'संगर' की एक शताब्दी बीती है। विचार 'वाद' बन गये और वही फिर मनुष्यों की गुटबन्दियों का कारण बने। उन्हें लगा कि इस विचारधारा या 'वाद' के अनुपालन में उनकी मुक्ति है। अतः कुछ लोगों के खिलाफ कुछ लोग एकजुट हुए। संघर्ष हुआ। करोड़ों इनकी बलि चढ़ गये। मार्क्सवाद, लेनिनवाद, माओवाद, स्टालिनवाद, पूँजीवाद, नाज़ीवाद आदि कुछ एक नाम हैं। पंत की रचनाशीलता इन सबसे परिचित होकर ही प्रस्फुटित हो रही थी। सभी 'वादों' के अपने-अपने सत्य थे। अपने तर्क थे। अपनी धारणा और प्रतिबद्धता थी- जो शायद अपने-अपनों को न सिर्फ अजनबी बनाती थी, बल्कि दुश्मन भी बनाती थी।

गई सदी के आखिरी दशक से नया-सा कुछ सुलगने लगा था। अब आस्थाओं को लेकर संघर्ष होने लगा। धार्मिक अतिवादिताएँ प्रबल रूप से उठ खड़ी हुईं। पुराने समय की धार्मिक आस्थाएँ प्रबल वेग से आधुनिक युग में आ उपस्थित हुई हैं। सोचा भी नहीं जा सकता कि हम आधुनिक युग के तर्क और विज्ञान के द्वारा संचालित युग की ओर बढ़ रहे हैं या फिर मजहब संचालित समाज की ओर। और मजहब भी ऐसा जो आदमी को इतना अन्धा बना दे कि मनुष्यता उसमें गुम हो जाय। अफगानिस्तान, अल्जीरिया आदि देशों में जो कुछ हो रहा है, वह एक बात तो है ही, पर स्वयं हंटिग्टन की सभ्यताओं का संघर्ष वाली अवधारणा भी स्थान बनाती जा रही है।

ऐसे विषम परिवेश में सुमित्रानंदन पंत जैसे कवि को याद करना निश्चित रूप से हमें एक मार्ग देगा। यह मार्ग हमें उस समय दिखता है, जब हम इस तथ्य की ओर ध्यान देते हैं कि पंत स्वच्छन्दतावाद की उस धारा से जुड़ते हैं जहाँ प्रकृति का सिर्फ चित्रण ही नहीं हुआ है बल्कि उसे पूजा भी गया है। यूरोप की 'पैन्थीस्टिक पोइट्री' के समान पंत की कविता भी प्रकृति को आस्था के स्तर तक जाने का प्रयास है।

पंत के सुन्दर और हृदयस्पर्शी प्रकृति-चित्रणों के पीछे एक सघन आस्था की झलक मिलती है। यह सघन आस्था टकराव की नहीं है। प्रेम की है। मेरा मानना है कि संसार में जितने भी बड़े मजहब हैं, संगठित धर्म हैं, उनके पीछे एक बड़ी सत्ता अवश्य रही है। अहिंसक बौद्ध धर्म के पीछे अशोक थे। इस्लाम, ईसाइयत हिन्दू और यहूदी धर्म कहीं न कहीं किसी बड़ी सत्ता से अवश्य जुड़ा था। प्रकृति और उसकी विविध अभिव्यक्तियों को धर्म जैसा मानने वालों के साथ ऐसा न हो सका। इस संसार के संगठित धर्म एक सत्ता के विरोध में अपने उदय के बाद या तो किसी सत्ता के सशक्त हाथों में पले और बढ़े या फिर वे स्वयं सत्ता बन गये। इस सत्ता में सामाजिक और राजनैतिक दोनों सत्ताएँ शामिल हैं।

लेकिन इसके समानान्तर एक ऐसी आस्था भी है जिसे सत्ता के सशक्त हाथ का समर्थन नहीं मिला। यह आस्था सर्ववाद की है। प्रकृति को ही सब कुछ मानने वाली 'पैन्थायिन पोइट्री' अपने को स्वच्छन्दतावाद से अभिन्न रूप से जोड़ती है।

वर्ड्सवर्थ अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद के एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। उक्त स्वच्छन्दतावादी आस्था वर्ड्सवर्थ की कविताओं में बखूबी प्रकट हुई है। लूसी श्रृंखला की कविताएँ, इसका सशक्त प्रमाण हैं। 'लूसी' कविताओं में 'लूसी' प्रकृति की है। प्रकृति उसके लिए है। दोनों के बीच खास तरह का अंगागिभाव है। संसार में लूसी के लिए प्रकृति के अलावा और कोई भी नहीं है। इसीलिए रात के तारे उसे प्रिय हैं। झरनों के कलकल निनाद के प्रति उसके कान सजग हैं। हर खिलता हुआ फूल उसके चेहरे को और खिला देता है। सिर्फ इतना ही नहीं, प्रकृति उस बालिका के लिए एक बड़ी आश्वस्ति है। एक सहारा है- बिलकुल वैसे ही जैसे दुःख में फँसा दीन-हीन मनुष्य करुणानिधांन ईश्वर को सहारा

बनाता है। लूसी चाहे जिंदगी के बियाबान में हो, या मैदान में वह धरती पर पड़ी हो, या स्वर्ग जैसे रमणीय स्थल पर, वह किसी गहन वन में हो या सुंदर कुंज लताओं में सब जगह प्रकृति के सहलाते और दुलराते हाथ उस पर हैं। प्रकृति ही उसका पोषण करती है। ईश्वर के समान ही प्रकृति के आश्रय में है वह। प्रकृति का नियंत्रण भी उसपर है। जिस प्रकार लूसी का लालन-पालन प्रकृति की स्नेहिल गोद में होता है, उसी प्रकार पंत के लिए भी प्रकृति बिल्कुल किसी सशक्त, करुणमयी, सत्ता की भाँति उपस्थित है। पंत की कविता में भी प्रकृति की ऐसी ही विविध अनुभूतियाँ अभिव्यक्त हुई हैं -

बाल-काल में जिसे जलद ने
कुमुद-कला से किलकाया,
तारावलि ने जिसे झुलाया
मृदु स्वप्नों ने सहलाया,
मारुत् ने जिसकी अलकों में
चंचल चुंबन उलझाया। वीणा-14

वर्ड्सवर्थ के लिए प्रकृति में जो कुछ भी दिखता है- यह प्रेमल है। 'रात एक बड़ी सांत्वना है। दिन खिलखिला उठता है। धरती माँ का समग्र-सर्जन उसके आँसू या खुशी बाँध लेते हैं। इन सब दृष्टियों से पंत वर्ड्सवर्थ के बहुत निकट हैं। यह तो प्रकृति का स्नेहमय रूप हुआ। प्रकृति त्राणदायी भी है। 'मार्या रे' कविता में मार्या रे बहुविध प्रताड़ित होती है। समाज से तरह-तरह की यातनाएँ मिलती हैं उस विक्षिप्त और बेकल मार्था रे को जब समाज के लोग मार डालने के लिए दौड़ते हैं तो प्रकृति चमत्कारिक ढंग से उसकी रक्षा करती है। आशय यह है कि यहाँ प्रकृति का सिर्फ चित्रण मात्र नहीं है। वह अलंकरण मात्र नहीं है। फैशनवश नहीं है। वह तो एक बड़े विश्वास और आस्था का आयाम बनकर आयी है।

मेरा मानना है कि सुमित्रानंदन पंत की कविता में प्रकृति की उपस्थिति को आलम्बन या उद्दीपन जैसी पारंपरिक रूपों में नहीं समझा जा सकता। दरअसल, वह आस्था की सघन रंगत से सुसम्पन्न है- कुछ-कुछ धार्मिक विश्वास जैसा। उनकी कविताओं में प्रकृति की अपनी विराटता है। वह एक सर्वव्यापक वस्तु एवं भाव के साथ उपस्थित है। वर्ड्सवर्थ के लिए समुद्र का लहराता हिल्लोरें लेता जल धरती माँ का उल्लास है। बादल अपने मौन प्रेम से धरती के मुख को चूमता चला जाता है। बहुत कुछ इसी भाव में प्रकृति पंत की कविताओं में भी उपस्थित है। वह न सिर्फ जीवन्त उपस्थिति है, बल्कि एक विराट चेतन-सत्ता है। यह चेतना सत्ता अपने मौन में भी पर्याप्त मुखर और सक्रिय है। यह प्रकृति अपने नाना रूपों के बावजूद कवि के मन में एक पूर्ण और असीम सौन्दर्य के पूर्व कल्पित अनुभूति की भाँति विद्यमान है-

ऐ ! असीम सौन्दर्य सिन्धु की
विपुल वीचियों के श्रृंगार !
मेरे मानस की तरंग में
पुनः अनंग ! बनो साकार।

यह रूप अपनी विराटता में यदि ब्रह्म नहीं है, तो उसकी नाना अभिव्यक्तियों में से एक अवश्य है। इसी कारण वह वंदनीय है। उसकी समस्त अभिव्यक्तियाँ कवि को प्रिय हैं। उसके अनेक रूप कवि में कुतूहल जगाते हैं। उसे विस्मित करते हैं। इसी बिन्दु पर हमें छायावादी रहस्यवाद का जवाब मिल जाता है और मध्यकालीन रहस्यवाद से उसका पृथकत्व स्पष्ट हो जाता है। इस विराट् प्रकृति की अभिव्यक्ति कवि को कभी स्त्री-भाव में प्राप्त होती है, तो कभी पुरुष भाव में।

सुमित्रानंदन पंत के प्रकृति-चित्रण में प्रकृति की रोमांचकता, उसका सौन्दर्य, और उसके नाना रूप अपनी जगह हैं, लेकिन इन सबसे ऊपर और महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उनकी कविताओं में वर्णित प्रकृति का अपना रहस्यलोक है। यही रहस्यलोक वह वास्तविक वैकल्पिक विश्व है, जिसे कवि अपनी कविता में सृजित करता है और रोजाना की जिन्दगी में भी चाहता है।

दरअसल, यह वैकल्पिक विश्व 'ताप तप्त जगती' का विकल्प है। इस दुनिया के यथार्थ की पीड़ा है। इस "यथार्थ की पीड़ा से भागने के लिए प्रसाद ने अचेतनता के अतिरिक्त सागर के निर्जन तट पर भी भाग जाना चाहा। डॉ० नामवर सिंह जिसे 'भागना' कह रहे हैं- वह 'वेदना पंकिल' विश्व को नकारकर एक नये विश्व की कल्पना है। स्वच्छन्दतावादियों को नये विश्व की परिकल्पना इस कारण करनी पड़ी, क्योंकि यह जो दुनिया है उसमें-

पुण्य चरित सज्जन से विषयी कल्मष मध्य निवासी
न्यायी से वंचक, दाता से कृपण विशेष विलासी
जहाँ भ्रमी से क्रयी-विक्रयी, वेश्या सुखी सती से।
निर्जन वन है परम सुखद उस न्याय-रहित जगती से।5

इसी कारण प्रकृति या अतीत छायावादी कवियों के लिए एक 'वैकल्पिक स्पेस' है। वह पलायन नहीं है। कीट्स जब गहन जंगलों के अलौकिक सौन्दर्य में अचेतन हो खो जाना चाहते हैं तो उसका कारण भी यही है। रामनरेश त्रिपाठी का पथिक भी कामना करता है :-

जाना नहीं चाहता हूँ मै क्षण-भर को भी जग में।
चलता रहूँ यही इच्छा है, सदा प्रेम के मग में।
यह इच्छा है, वन सुगन्ध फूलों के बीच बसूँगा।
यह इच्छा है कुंज-कुंज में वायु बना विचरूँगा।

घुटते हुए, रूढ़िग्रस्त एवं शोषणकारी समाज की अपेक्षा कवि को एक अलग समाज चाहिए। एक नया संसार चाहिए। एक ऐसा संसार जहाँ कवि की कल्पना को टेक मिल सके। यह संसार 'दूर उन खेतों के उस पार' भी हो सकता है -

दूर, उन खेतों के उस पार जहाँ तक गई नील झनकार छिपा छाया-वन में सुकुमार स्वर्ग की परियों का संसार।

'स्वर्ग की परियों का संसार' कवि की अपनी आकांक्षाओं का संसार है। अपने इसी संसार के लिए भटकते पंत कभी-कभी तो गहरे सपनों में उतर जाते है और 'जीवन की आतपुरल लहरों पर' स्थित होते हुए भी वह अपने जीवन को परम 'शोभा की ज्याला में लिपटा' महसूस करते हैं। इस दशा में

मेरे भावों के सतरंग स्तर
बाँधे स्वर्ग धरा का अन्तर 7

'दूर उन खेतों के उस पार' और सपनों के अलावा कवि अपने संसार की तलाश में पुराने संसार में भी उतरता है। अतीत की दुनिया उसे वर्तमान की तुलना में स्वर्णिम दिखती है।

वस्तुतः यह जग की विषमता का बोध भी है और उससे संघर्षरत रहने का एक उपक्रम भी। प्रकृति, सपने और अतीत के आदर्श कवि के लिए विषम जगद् के प्रतिकार हैं।कवि की कल्पना यदि निहायत वायवी होती तो संसार और उसके समय की भयावहता का इतना तीव्र बोध भी नहीं होता। अपनी सुप्रसिद्ध कविता 'परिवर्तन' में कवि का यह बोध द्रष्टव्य है-

रुधिर के हैं जगती के प्रात,
चितानल के ये सायंकाल;
शून्य निःश्वासों का आकाश

आँसुओं के ये सिन्धु विशाल,

यहाँ सुख सरसों, शोक सुमेरू,
अरे जग है, जग का कंकाल ।।
वृथा रे, ये अरण्य चीत्कार,
शांति सुख है "परिवर्तन" उस पार ! 8

'उस पार' में शांति सुख की तलाश को पलायनवाद नहीं कहना चाहिए। यह विद्यमान और वर्तमान जगत् की भयावहता ही है जो 'उस लोक' की स्वर्णिम कल्पना के लिए कवि को विवश करती है। ध्यातव्य है कि यह लोक 'परलोक' नहीं है। यह तो इसी दुनिया में एक 'वैकल्पिक स्पेस' को तलाशने के क्रम में उपजी एक सुखद वांछा है। सपना है। यथार्थ है जिसे वह कल्पना में रचता है। इससे संघर्ष की प्रेरणा मिलती है, इसके माध्यम से उत्साह को बचाया जा सकता है। कवि अपने मन के स्तर पर ही सही, एक नये संसार का ताना-बाना तो रचता है, जिस तरह प्रसाद 'कोलाहल की अवनी' का विकल्प तलाशते हैं, उसी तरह पंत भी जीर्ण, स्रस्त, ध्वस्त और शुष्क शीर्ण विश्व से मुक्ति चाहते हैं। एक नई दुनिया चाहते हैं।

पंत इस नई दुनिया के लिए नई आस्था भी तलाशते हैं। आखिर नये संसार को पुरानी आस्थाओं के बदौलत नहीं चलाया जा सकता। नये विश्व की नई आस्था मनुष्य को यह विश्वास दे सकती है कि संसार में सब कुछ प्रेमल है, स्नेहिल है। यहाँ धर्मी-विधर्मी दीनी-काफ़िर जैसा कुछ भी नहीं है। यदि मनुष्य में प्रकृति और उसके विविध रूपों और रागों को प्रेम करने की शक्ति आ जाय तो संसार में घृणा करने लायक कुछ भी शेष नहीं रहेगा। यह जो कवि का विविध वादों और मतों की ओर छलांगना है, इसे भी उसकी नई दुनिया की तलाश व उसकी आस्था की तलाश के उपक्रम के रूप में देखना चाहिए। प्रकृति पदार्थ, गाँधीवाद और अरविन्द दर्शन की ओर कवि के प्रस्थान को भी इसी संदर्भ में देखा जाना चाहिए ।

सन्दर्भ सूची

1.अतीत का स्वर्णदेश : वीणा, पंत ग्रंथावली-2, पृ. 107
2.पंत ग्रंथावली भाग-2, पृ. 82
3.पंत ग्रंथावली भाग 2, पृ. 14
4.छायावाद : डॉ. नामवर सिंह, पृ. 145
5.पथिक : रामनरेश त्रिपाठी, पृ. 17
6.वही, 1/56 पृ. 18
7.पंत ग्रंथावली-2, 'स्वप्न पूजन' पृ. 58
8.पंत ग्रंथावली, पृ. 82